राधाकृष्ण द्वारा प्रकाशित
त्रिलोचन के अन्य काव्य-संग्रह

उस जनपद का कवि हूँ

तुम्हें सौंपता हूँ

अनकहनी भी कुछ कहनी है

त्रिलोचन

कवि सुरेंद्रकुमार श्रीवास्तव को

क्रम

मूर्तिकार हो दक्ष 9
कवि, क्या हुआ 10
सत्य यही है 11
देख रहा हूँ मैं तुम को 12
पत्र तुम्हारा 13
यह दुनिया है 14
गया वसंत और आया कब 15
अच्छे समय चला था 16
धन की उतनी नहीं 17
परदा अपनों से होता है 18
वह मेरा भाई है 19
याद तुम्हारी आई है 20
क्या करता हूँ 21
इन डारन वे फूल 22
पाठक नया नहीं हूँ 23
हृदय चाहते हो तो दे दूँ 24
जहाँ धूल उड़ती हो 25
आदर्शों का भेद और मैत्री 26
मुझे भरोसा रहा तुम्हारा 27
व्यथा हुई है मुझे 28
हम रहे रहे न रहे 29
दुख यों कोई चीज नहीं है 30
कितना अच्छा होता 31
लिखा हुआ था, भेंट हो गयी 32
क्या वह भी साहित्यकार है 33
रामनाथ मेहरोत्रा 34
कहो किसी से कुछ मत 35
धौली, काली, लाल टोपियों की 36
भीषण कमी अन्न की 37
मन की बात न हुई 38
बाधाओं के सम्मुख 39
जीवन के चौंतीस वर्ष 40
पुत्र शाह के हुआ 41
दुख, जब जब जब तुम आये 42
नहीं चाहता, कभी तरस खाओ 43
जीवन की राह बताऊँ क्या 44
यह विकट पहाड़ी रास्ता है 45
वाह, वाह भाई 46
मुझे पटक कर 47
कहना मुझे बहुत कुछ है 48
मैं निराश हूँ 49
जीवन की दूसरी दिशा है 50
तुम्हीं जानते हो 51
दुख में आँखें भर आएँ 52
प्रेम कुछ नहीं है 53
जैसे तुम को छू लेता हूँ 54
इस में क्या है 55
तुम पहचान न पाओ चाहे 56
मेरे कंधों पर चढ़ चढ़ कर 57

टर्र टर्र कर काशी-कूप निवासी 58
पुनः शरद ऋतु आयी है 59
भाई, दुख के चक्कर में 60
पहली नज़र बता देती है 61
हवा गा रही है 62
हँस कर, गा कर और खेल कर 63
कैसे हो तुम 64
जिस के सिर पड़ती है 65
कहा जियावन ने 66
जीना सब से कठिन काम है 67
काशी है यह 68
मुझे रूप वह नहीं मिला है 69
कभी-कभी वह शून्य 70
काशी मुझे गाँव सी लगती है 71
काशी में अब कौन 72
काशीपुरी पवित्र है 73
हम तुम दोनों आज दूर हैं 74
हँसता है अकाल 75
जीवन से मैं ने सीखा है 76
हारे खीझे मन से 77
कोई समझ न पाए 78
सोचा था मन ही मन 79
कवि तो मानव-आत्मा का 80
तुम हिंदू हो ? कैसे हिंदू हो ? 81
सच्ची बात बुरी लगती है 82
तुम ने जो कुछ कहा 83
कहा कुछ नहीं 84
चिंता छोड़ो 85
वर्षा हुई 86
सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध 87
नई पढ़ाई अजी पढ़ाई है 88
छूट-छूट कर भी 89
मेरी भी तक़दीर बाँच दो 90
तुम ने अहंकार खोया है 91
झेला नंगी पीठ 92
चिंताओं के सागर में 93
उन के लिए नहीं लिखता मैं 94
थके हुए हैं पंख चेतना के 95
मेरी से बढ़ कर है तेरी आवश्यकता 96
झाड़ और झंखाड़ 97
आ कर चुभा कलेजे में 98
बहुत सोचता हूँ मैं 99
चौदह चरणों में 100
सुख के झूले पर 101
सभा पागलों ने की 102
कवि, खा खा कर तुम 103
कहते हैं नादान 104

मूर्तिकार हो दक्ष विधाता, किंतु तुम्हारी
गढ़ी मूर्तियाँ सब क्षयिष्णु हैं. अच्छा होता
तुम ने ऐसा किया न होता. तब तो सारी
कथा और कुछ होती. दुख का अक्षय सोता

नहीं दिखाई देता. विश्व कदापि न खोता
एक बार उपलब्ध संपदा, और रंग ही
रहता. कष्ट व्यथाकुल जीवन कभी न ढोता
भूतल. तुम ने इसे न सोचा. यही ढंग ही

तुम्हें रुचा. जो रचा, जड़ दिया वही संग ही
परिवर्तन, विनाश या अपचय. चाहे जो हो,
कुछ दिन को गा ले, मुसका ले, मूर्ति व्यंग्य ही
रह जाएगी; आपस में कहने को यों तो

उस का वही नाम होगा पहले का. इस से
क्या होता है, कौन कहेगा, किस की, किस से.

11. 1. 1951

कवि, क्या हुआ, नहीं तुम से यदि चित्र प्रिया का
बना. तुम्हें चिंता क्या, सब जन चित्रकार तो
होते नहीं, जानते ही हो. किंतु क्रिया का
फल होता है, पृथ्वीतल पर मधुर प्यार तो
आता ही है, चंद्रोदय का पुरस्कार तो
सब के लिए समान सदा है पर सागर का
अनिर्बंध उल्लास उसी का है, प्रसार तो
चटुल चाँदनी का सब पर है, दुनिया भर का
वर्णन कौन करे. कवि, तुम को अपने स्वर का
ध्यान रहे, सम्मान रहे, तो जैसा पहले
के कवियों ने गीतों में ही उस सुंदर का
रूप रख दिया, तुम कर लोगे. कोई कह ले

कुछ, पर हृदय हृदय में स्पंदित होने वाला
काव्य अमर है, सुकवि बीज-स्वर बोने वाला.

19. 1. 1951

सत्य यही है मैं तुम से अनजान नहीं था
किंतु जानता था जो जितना उसे जानना
कहना उचित नहीं है. उसको ज्ञान मानना
एक दुराग्रह होगा. मुझ को भान नहीं था

उस ऐश्वर्य राशि का जो प्रत्यक्ष सत्य है,
जिस में है मुसकान उषा की, मधुराका की
सकल तरंगें लहराती हैं, नव आभा की
पूर्ण व्यंजना है, वैभव का अनुगत्य है.

बदल गया हूँ इसी लिए मैं आज नवीने,
तट जैसे लहरों को पी कर बदल गया हो,
मधु ऋतु में दल दल पीपल हो गया नया हो
जैसे, स्वप्न अपूर्व आ गए मन में जीने.

कण कण अन्वेषण कर मैं ने तुम को पाया,
क्षण क्षण गीतों में तुम आईं, मैं ने गाया.

18. 2. 1950

देख रहा हूँ मैं तुम को मानव-काया में
अपने से अभिन्न, लेकिन विश्वास न होता
तुम भी पृथ्वी की पुत्री हो. स्वर्ग न खोता
तुम को तो नभ की नीरव सुनील छाया में,

इस दुनिया में, कहो कहाँ से प्रभा तुम्हारी
छा जाती वरदान रूप में. जग का जीवन
धन्य तुम्हारी साँसों से है. आत्म समर्पण
करता हूँ मैं उसी भाव से, जैसे, नारी,

आदिम नर ने किया. नई यह बात नहीं है,
नए प्राण फिर भी नवीनता का मधु पीते
जीवन की उन्मत्त धार में मरते जीते
चले जा रहे हैं, उन को अवकाश नहीं है.

आज तुम्हारी आँखों में मैं अपना जीवन
देख रहा नीरव, गाता है गीत समीरण.

19. 2. 1950

पत्र तुम्हारा. पढ़ा. और नीरव ही देखा
इधर उधर. तुम अभी अभी केवल कुछ पहले
आए थे. तब द्वार बंद था. जीवन-रेखा
मैं भी पथ पर खींच रहा था. चित्र सुनहले

जो मन में थे, उन्हें धरा पर खोज रहा था,
तुम को क्या मालूम. तुम्हारी तो अभिलाषा
मन की मन में रही. किसी ने नहीं कहा था
कहाँ गया वह, तुम आए थे, जिसकी भाषा

सुनने और समझने, अमिलनजन्य निराशा
कितना मूक बना देती है, छिपा नहीं है
मुझ से. हार्दिक क्षमा और अप्रतिहत आशा
पदचिह्नों पर दौड़ाती है, कृपा नहीं है.

मुझे तुम्हारा हृदय निरंतर बल देता है,
जगज्जलधि में जीवन की नौका खेता है.

24. 2. 1950

यह दुनिया है, यहाँ कौन किसका है, लग कर
जीना है तो यहाँ कुछ न कुछ होगा करना.
भीड़ भाड़ यह. जगह कहाँ. सूने में जग कर
काम नहीं चलता. इससे तो केवल मरना
हो सकता है. संकोचों से सागर तरना
शक्य नहीं है. अगर चाहते हो तुम जीना,
धक्के मारो इसी भीड़ पर, इससे डरना,
जीवन को विनष्ट करना है. जिस ने छीना
नहीं सिद्धियों को विघ्नों से, उस का जीना
नहीं मनुष्योचित है. यों प्रारब्धवाद से
कुछ भी होता नहीं, अगर औरों से कीना
रक्खोगे तो क्या पाओगे. खेत खाद से

उर्वर होता है, जीवन भी आघातों से
विकसित होता है, बढ़ता है उत्पातों से.

11. 4. 1951

गया वसंत और आया कब, याद नहीं है.
अब तो धूल उड़ा करती है, फूल कहाँ हैं,
सूनी है पेड़ों की डालें; अगर कहीं हैं
छिपी कली एकाध, तो नहीं भ्रमर वहाँ हैं,

कहीं भटकते होंगे. लू की लपट यहीं है
उठती सुरभि लहरियाँ गई अदृश्य जहाँ हैं
कृतियाँ; जहाँ विकास अलक्षित, ह्रास वहीं है,
पाया जाता मरण जन्म सुस्पृश्य जहाँ है.

कोई कुछ भी कहे गुने, परिवर्तन-धारा
बड़े वेग से बहती है, पल भर को रुकना
शक्य नहीं है. प्राप्य कहाँ है यहाँ किनारा,
बहना है सब को तरंग में. सोता चुकना

नहीं जानता है, चिर यात्री है, आवारा
वाक्शूर कह लें, आता है उसे न, झुकना.

22. 4. 1951

अच्छे समय चला था कवि जी, आप मिल गए
आपी को मैं खोज रहा था. घर पर लड़के
ने वतलाया कहीं गए हैं. पाँव किल गए
जहाँ के तहाँ . अव क्या होगा. दिल ही धड़के
कभी न जिस का, क्या समझेगा. पत्ता खड़के
पैरों से लग कर सन्नाटा भरी रात में
जैसे, वैसा मेरा मन था. तड़के तड़के
कल्ही चित्त पर चढ़ा आप वात की वात में
कर सकते हैं काम. मैं किसी वड़ी घांत में
फांस आप को नहीं रहा, यह सच कहता हूँ.
सुधा ने लिखा है, केले के पात पात में
पात उस तरह वात वात में वात वना दूँ

शक्ति नहीं है, आप एक चुभती सी कोई
कविता लिख दें, उसे भेज दूँ, स्नेह समोई.

24. 4 1951

धन की उतनी नहीं मुझे जन की परवा है
जितनी जो मुझ से खुल कर मन से मिलता है
मैं उस का वशवर्ती हूँ. इस से खिलता है
मेरे प्राणों का शतदल. एक ही दवा है

जीवन के सौ रोगों की, चाहो तो ले लो
अच्छे होंगे स्वयं, दूसरों के भी दुख को
काट सकोगे, उगा सकोगे सब के सुख को,
अपनापन सब पर पसार दो. खुल कर खेलो

जीवन के सब खेल, न' चिंता लेश रहेगी,
सभी ओर अपने ही देंगे सदय दिखाई
नहीं रहेगा कोट, नहीं होगी यह खाई
शत्रु मित्र की. गोरे काले की न बहेगी

नदी खून की, खून एक ही दोनों में है,
वही हवा आँगन में है जो कोनों में है.

26. 4. 1951

परदा अपनों से होता है और पराए
चाहे नंगा देखें, इस से क्या जाता है.
यदि यों ही कुछ किए बिना गौरव आता है
तो हलोर लेना अच्छा है. किए कराए

पर पानी फिरते देखा है. इस दुनिया का
कोई ठीक नहीं है, जैसे रहे रहाए
पहले वाले वही ठीक है, बहे बहाए
जो नवीन धारा में, उन की गिरी पताका

खोह कंदरा में. ऐसों की बातें करना
समय नष्ट करना है. परदे की जय बोलो,
परदे में ही नैतिकता का परदा खोलो,
कौन देखता है, सुख लूटो. आख़िर मरना

तो है ही, इस से परदे पर परदा रखना
उत्तम है, वे मानेंगे जिन को है चखना.

26. 4. 1951

वह मेरा भाई है जिस को तुम अलगाना
अपना धर्म समझ बैठे हो. मैं न सुनूँगा
बात तुम्हारी. उसी हृदय की बात सुनूँगा
जिस के पीछे शास्त्र चला करते हैं. माना,

यह वह जो तुम कहते हो, उस में न मिलेगा,
वह भी उस के पास न होगा जिसे तुम्हारे
यहाँ देख सकता है कोई. तुम्हें पुकारे
तो कोई पाएगा क्या, किस तरह खिलेगा

पारिजात जीवन का. तुम तो ध्वजा धर्म की
लिए लिए फिरते हो, तुम को ग्लानि नहीं है,
कोई भी मर जाय तुम्हारी हानि नहीं है
बहुत हुआ, दिख गयी तुम्हारी कला कर्म की.

हिंदू मुसलमान ईसाई अब ये सारे
नाम मिटेंगे, सब मनुष्य होंगे तुम हारे.

26. 4. 1951

याद तुम्हारी आई है, गंभीर उदासी
पकड़ रही है मुझे. करूँ क्या, लाचारी है.
जीवन की कल्पना सत्य से जो हारी है

नया नहीं है. कौन वृत्ति थी मन में प्यासी
जिस का यह परिणाम है. मुझे ध्यान तुम्हारा
नहीं इस लिए आया है कि तुम्हारे जैसा
रूप दिखायी नहीं दिया है अथवा वैसा
है स्वभाव ही नहीं किसी में अथवा हारा

पंचवाण से हूँ मैं. इन में नहीं एक भी
वात सही है. मन का ऐसा कुछ खोया है
अव की मैं ने, जैसा कभी नहीं खोया है.
एकाकीपन वुरा नहीं, झेलते हैं सभी.

अपना अंतस्तल टोया क्या वहाँ नहीं है,
साहचर्य ही देश काल में छिपा कहीं है.

26. 4. 1951

क्या करता हूँ, क्यों करता हूँ, क्या करना है—
सोचा करता हूँ. मुझ को प्रायः यह या वह
खींच लिया करता है; ऐसी चिंता अहरह
मुझे लगी रहती है. भव सागर तरना है.

किसी तरह भी, चाहे जैसे, हाथ चला कर;
आख़िर दुनिया में मैं भी हूँ. इतना भी क्या
नहीं जानता मैं, धर्ता हूँ जिस का उस का
भरना होगा, लेन देन का सत्य सुना कर

दुनिया अपने पथ पर चलती है. जो चलते
हैं उस के अनुसार सफलता पा जाते हैं;
आदर्शोपासक मनमारे पछताते हैं.
कहीं छले जाने पर दुनिया वाले छलते

हैं, उन को, जो आस पास हैं. भले भले हैं.
औरों को दुख देते हैं जो कहीं जले हैं.

26. 5. 1951

इन डारन वे फूल न देखे जिन को देखा
पिछले साल. फूल तो आए, वही नहीं था
जिस को देखा. दल सौरभ परिकोष कहीं था
नहीं, जिसे पहचान चुका था, उस की रेखा

कहाँ दिखाई दी. पर बाग़ कहाँ सूना है
डाल डाल पर फूल खिले हैं, और भ्रमर भी
गुन गुन गुन गुन गान गा रहे हैं, सुख स्वर भी
छाया है, आकाश हो गया अब दूना है.

सब को हर्ष हुलास, उड़ रहे हैं खग गाते
इधर उधर, रंगों की धारा दौड़ रही है
और पारखी आँखों का मुख मोड़ रही है.
नित्य नई दुनिया है, जो आते हैं जाते

हैं, फिर उन का स्थान और आ कर लेते हैं,
जीवन की यह नाव तरंगों में खेते हैं.

26. 4 1951

पाठक नया नहीं हूँ तारों की भाषा का,
रोज पढ़ा करता हूँ, चिर नीरवता ही तो
इन की भूतल पर आती है कोई भी तो
नहीं जानता है कुछ आशय. अभिलाषा का

छोर किसी को कहाँ मिला है. हारी आँखें
अंधकार से इन पर जा टिकती हैं पल को,
वर्तमान से हारा मन आगामी कल को
कहाँ देख पाता है. खग की जर्जर पाँखें

कहाँ प्रभंजन. सागर के विक्षुब्ध ज्वार में
चल पाती हैं, कहीं खोज कर ज़रा सहारा
सुस्ताती हैं. यही शक्ति का आशय सारा
चेतन में है, स्फूर्ति सर्वदा ही उभार में

नहीं मिली है, आज लड़े, कल हारे, बैठे,
जोड़ों में वल हुआ, उठे; फिर रण में पैठे.

26 4. 1951

हृदय चाहते हो तो दे दूँ, इस में कोई
द्विधा नहीं है और हृदय ही तो जीवन का
मूल स्रोत है; उसे सौंप कर तुम्हें विजन का
भय मन से दूर हो जायगा, उस की सोई

हुई असत् वृत्तियाँ सदा को सुप्त रहेंगी,
जैसे हैं विकीर्ण विद्युत्कण. उन का संग्रह,
विच्छेदन, विस्फोटन है शक्ति का दुराग्रह;
जीवन की धाराएँ नीरव नित्य बहेंगी

विकल व्योमगंगा के ग्रहांतरों में. भूतल
जैसे अब तक वायुमंडलों में अपने ही
रुद्ध वद्ध रहता आया है फिर वैसे ही
नहीं रहेगा, मुक्त वनेगा. सारी हलचल

मानव की, जो आज दृश्य है नहीं रहेगी;
पृथ्वी की जय-कथा सौरमंडली कहेगी.

26. 4. 1951

जहाँ धूल उड़ती हो, कोई रूख भी कहीं
नहीं दिखाई पड़ता हो, वह स्थान तुम्हारा
है क्या. वहाँ रह सकोगे तुम ? कोई हारा,
भूला भटका, मिल जाए तो उसे क्या नहीं

पथ बतला दोगे, जल दोगे, पास बैठ कर
सहृदयता से उस की सुन कर बात कहोगे
अपनी भी, या निर्जन से ही मौन रहोगे
पड़े पड़े एकांत में कहीं, और रूठ कर

अपने से भी कुछ न करोगे ? मानवता का
मान गिरा दोगे ? जो कुछ भी कहीं किया है
मानव ने, जिस पर औरों ने ध्यान दिया है,
तीव्र उपेक्षा द्वारा उसे भुला कर ताका

करोगे सदा आसमान को ? तो, यह जीवन
युक्त न होगा, मुक्त न होगा यह अमुक्त मन.

26. 4 1951

आदर्शों का भेद और मैत्री : यह दोनों
साथ साथ क्या चल सकते हैं. मैं ने इस पर
वार वार सोचा है. पर ऐसा मत जिस पर
निश्चयपूर्वक टिकें न पाया. जादू टोनों

वशीकरण से जो मैत्री होती थी उस का
क्या परिणाम हुआ करता था, ज्ञात किसे है,
रूप, शील, शक्ति का आज भी पता जिसे है
सहज प्रभाव देख पाएगा. मैत्री भुस का

अवलेपन ही कभी नहीं है, आदर्शों की
एकान्विति ही चरम नहीं है, ध्येय पक्ष में,
विपुल प्रसाधन सामग्री ही नहीं कक्ष में
शोभा वर्धन करती है, सब उत्कर्षों की

परिणति है अधिवासी में. सब का आवाहन
करता हूँ अपरिग्रह से है समुद्दीप्त मन.

26. 4. 1951

मुझे भरोसा रहा तुम्हारा, सदा रहेगा,
किस से और कहूँगा अपने मन की बातें.
होती ही रहती हैं उजली काली रातें,
मन अपने अनुमान सुना कर किसे कहेगा.

था संयोग, हो गया परिचय, लेकिन इतना
ही तो अंत नहीं है. देखा, आगे आगे
ममता अतुल तुम्हारी, मुझ को सोए जागे
घेर रही है बढ़ बढ़ कर. जैसे जो जितना

मुझे दे दिया उतने से संतोष नहीं है,
और और इस जन को देने को आतुर हो;
उस पर इतनी कृपा पंथ जिस का बंधुर हो,
इतनी नीरवता से. देखा तोष नहीं है

तुम्हें. अगर मैं दूर दूर ही फिरा करूँ तो
हानि कौन है, सजल घटा से घिरा करूँ तो.

26. 4. 1951

व्यथा हुई है मुझे, मनुष्य भिखारी को भी
खाना देता है, पानी पूछा करता है,
जो देता है सोच सोच उस को मरता है
कभी नहीं. जो दिया दे दिया. कोई लोभी

इतना कभी नहीं होता है, केवल खाना
खाने को अपमान सहे. जिन से नाता है
उन के आने से अपनापन आ जाता है,
जो भूला भूला रहता है, उसे भुलाना

ठीक नहीं है. निःस्व धनी कोई कैसा हो,
अपने घर आए तो उठ कर आसन देना
अच्छा है. ऐंठ से अकड़ना माथे लेना
है कुसूर. दुनिया है, जब जिससे जैसा हो

किए चलो वस, अपनी दिशा न चूको जग में
मानुप सव के ऊपर है, चाहे जिस मग में.

26. 4. 1951

हम रहे रहे न रहे, क्या है, इस जीवन का
कुछ ठीक नहीं, जितने दम है उतने दम है,
जाते क्या कोई जानेगा, किस का ग़म है,
फिर करें प्रतीक्षा किस पल की, जिस से मन का

विश्राम बढ़े, भ्रम है, किस को मिल पाता है.
फिर भी किस के स्वप्नों की यात्रा बंद हुई
आज तक. भावना ही तो सस्वर छंद हुई
कवि का, संबंध यही तो दिखला जाता है.

जीवन की मूक कथा भाषा के वाहन से
इस मन से उस मन तक सुगंध की सी छा छा
भर देती है सूना अंतर, प्रकाश आ आ
हर लेता है भ्रम, भय, दुराव सारे मन से.

मुट्ठी भर धूल आदमी है, कुछ और नहीं
जो फल होता है वही आम का बौर नहीं.

4. 5. 1951

दुख यों कोई चीज़ नहीं है, मन की छाया
है, लेकिन पैरों पर लेटे रहना इस की
प्रकृति नहीं है सिर पर चढ़ जाता है, जिस की
शामत आई. वही करा लेता है, आया

कभी न जिस का ध्यान. बुद्धि-बल खो जाता है,
सूझ सिकुड़ जाती है, सारी अभिलाषाएँ
और महत्वाकांक्षाएँ नव परिभाषाएँ
रचती रहती हैं. शब्दों में हो जाता है

पर्यवसित ध्रुव ध्येय जन्म का. तर्कजाल ही
रह जाता है मनोविनोद का अचल साधन,
कैसा है संघर्ष और क्या सुषमाराधन,
आत्मनिवेदन. आह, मुझे उपयुक्त काल ही

मिला नहीं अन्यथा और कुछ जीवन होता;
मृत जन, तुम से जो अब होता है तब होता.

24. 5 1951

कितना अच्छा होता, यह होता, वह होता,
लोगों की कल्पना कहाँ थकने पाती है
पल भर को भी. चिर अतृप्ति जो आती है,
नहीं सूखने पाता उस का अक्षय सोता.

वेगवती धारा में उस की, अपना जो 'है'
'नहीं' बना है, मन भी अंगीकार न करता
इस दुर्बल चिर परिचित 'है' को, जीता मरता
जैसे तैसे रहता है एकाकी, दो है

नहीं, उसे अवलंब नहीं कुछ भी बाहर का
मिलता है, इस सहज सुलभ का देख अनादर
व्यथा हुई है मेरे मन को, कोई दर दर
क्यों ठोकर खाए, ललचाए, प्रतिपल घर का

स्निग्ध निमंत्रण है मिलता यदि तो हे भूखे
मन, मत भटको इधर उधर यों सूखे सूखे.

25. 5. 1951

लिखा हुआ था, भेंट हो गई. वैसे अब तो
मैं सपने देखा करता हूँ सोते जगते,
तार नहीं टूटता, जानता हूँ ये ठगते
हैं भोले भाले मन को. हाँ, सच है, सब तो

जाना हुआ आचरण कभी नहीं अपनाता,
ज्ञान और अज्ञान संग मानव जीवन के
रथ को खींच रहे हैं, पल छिन जैसे तिनके
विग्न वायु से उड़ते हैं. तब अब का नाता

मन का भ्रम है. ऐसा क्या कुछ जी में आया
जिस से राजमार्ग पर रोक सवारी दी, वह
कौन भाव था, सुप्त हृदय में स्वर बन कर वह
आया, मेरा नाम, चकित देखा तो पाया

अरे वही जिसकी उपासना करता करता
मैं योगी बन गया, आ गई पास अमरता.

25. 5. 1951

क्या वह भी साहित्यकार है, जिस की माता
भूखों नहीं मरे. पत्नी यदि जैसे तैसे
साथ रहे तो सहे दंड जीवन का, वैसे
साथ किसी के निकल जाय यदि बुद्धि विधाता

दें अच्छा है. बच्चे हों तो क्या कहना है,
स्वर्गादपि गरीयसी भारत की वसुधा पर
हैं दधीचि और कर्ण सरीखे, प्राप्त दान पर
कुछ दिन जी लेंगे, अपनी काँवर बहना है

अपने कंधे. देव दया होगी तो शादी
उन की भी होगी, उन के भी बच्चे होंगे,
वंश न टूटेगा, चाहिए और क्या, होंगे
यों ही सारे काम, इसे कहना बरबादी

बौद्धिक दिवालियापन है. साहित्यकार का
जीवन ऐसा ही है लोकोत्तर प्रकार का.

28. 5. 1951

रामनाथ मेहरोत्रा वसुधा के सहकारी
संपादक हैं. इधर धुले खद्दर के कपड़े
पहना करते हैं. खटिया पर ही पड़े पड़े
नहीं मक्खियाँ मारा करते अब. कुछ भारी

बात नहीं है इस में. केवल तेल लगाना
अगर ज़रा आ जाय तो समझ लो पौ बारा,
हँसी खुशी का वह एकी दिलकश फ़ौवारा
नृत्य करेगा. सूरज की किरनों का ताना

इंद्रधनुष का चँदवा होगा. कुछ ऐसे ही
रामनाथ के भाग जगे. देखा, सहकारी
आधा नर तो आधा नारी है. लाचारी
इसी बात की है. लेकिन दुनिया पैसे ही

से तुलती है, कौन कहे चाँदी है जिस की,
सीधी करनी पड़ीं जूतियाँ किस की किस की.

7. 6. 1951

कहो किसी से कुछ मत, जिस का जो जी चाहे
करे न करे, तुम्हारा इस में क्या जाता है,
सब से सब का मन समझाने का नाता है,
और कुछ नहीं. हलके, धुने रुई के फाहे

भला हवा की लहरों में कितने पल अविचल
रह सकते हैं, वेगवती इच्छाएँ जैसे
धावमान सरिताएँ तरु को बिलकुल वैसे
ही असमर्थ व्यक्ति को पटकें आज कहीं, कल

कहीं, ठिकाना ही क्या उस का. प्राणवान जो
होता है वह टिक सकता है, और थपेड़े
जैसे भी दे काल, उसे क्या, तुच्छ बखेड़े
हैं ये सब तो. जिसे नहीं कुछ भी गुमान हो

जीवन के संकट का, भला सामना वह क्या
कर सकता है, मानव है भय का संग्रह क्या.

8. 6. 1951

धौली, काली, लाल टोपियों की मर्यादा
का गुणगान वायुमंडल को चीर रहा है
नित्य निरंतर. सब कहते हैं अभी कहा है
अंश मात्र. टोपी ने इतना लिया, लबादा

कितने दिनों, महीनों, वर्षों में स्थिर होगा.
होगा भी या नहीं, कौन निश्चित कह सकता
है. अपनी अपनी उड़ान है. जो भी बकता
हो उस की चुप सुनते जाओ. जिस ने भोगा

है, वह तो गूँगी जनता है, जिसे जवाहर
जयप्रकाश गोलवलकर फुसलाया करते हैं—
स्वर्ग तुम्हें दिखलाएँगे हम, पर डरते हैं
कहीं तुम्हें यह या वह कोई रंग मनोहर

लग न जाय, तुम धारण कर लो, तब तो अपना
किया कुछ नहीं होगा, सच भी होगा सपना.

9. 6. 1951

भीषण कमी अन्न की, बलात्कार की अनुदिन
बढ़ने वाली गाथाएँ, हत्याएँ, डाके,
चोरी, रिश्वतख़ोरी; कोई बुरा न ताके
रामराज्य है. रामराज्य ही वढ़ती के दिन

आ जाने पर रावण-राज्य कहा जाता है,
राजदंड काले हाथों में पहुँच गया है,
और समय दो, मौक़ा दो. सब नया नया है,
कोई पूर्वाभ्यास नहीं था, जो आता है

उसे सहा जाता है, जो गद्दीनशीन हैं
अलापते हैं इसी राग को. ये जनता के
प्रतिनिधि हैं, भूखी, अपमानित, जड़ जनता के
ये खद्दरधारी प्रतिनिधि हैं, दीन हीन हैं

ज़रा और इन का घर भर दो, क्यों कि तुम्हारा
दु:ख दर्द तो नया नहीं है, बनो सहारा.

13. 6. 1951

मन की बात न हुई कि कवि जी सब से रूठे
ऊपर काँपा दैव और नीचे वे काँपे
जो भूतल के ईश्वर हैं, जिन के सब नापे
जोखे हैं दुनिया में, लेकिन यह तो झूठे

निराधार मानसिक दंभ का आस्फालन है.
कृत्या उस दुर्वासा की लौट कर उसी के
वक्ष का रुधिर पीती है. बात खुदकुशी के
अधिक पास है, पापशमन का प्रक्षालन है

और कुछ नहीं, मनस्तोष का एक ढंग है.
इससे क्या होता है, वज्र व्यवस्था भू की
कहाँ काँपती है तिल भर पल भर को, सूखी
बातों में क्या रखा है. सहज स्वस्थ अंग है

जीवन का विद्रोह, मोह से काम न कोई
हुआ आज तक, उठो, शक्ति जागे जो सोई.

23. 6. 1951

वाधाओं के सम्मुख थक कर बैठ न जाना,
तुम मनुष्य हो, मनुष्यता का यह बाना है,
करते ही जाएँगे उस को जो ठाना है,
अंतिम क्षण तक. तुम ने भी तो सीना ताना

बड़े गर्व से, और चल पड़े, बड़ी शान से
सिंह ध्वजा ले, अगर आज टूटी वह धारा
निर्झर के अजस्र कल कल की, तुम को हारा
औरों ने देखा, अपनाया रुदन गान से

विनिमय में, तो वह उद्धत अभिमान तुम्हारा
शरण कहाँ पाएगा. तुम को दर्द न होगा
इतने दिन तक जो साथी था, सुख दुख भोगा,
जिस ने साथ-साथ, तुम को सर्वदा उबारा,

नहीं डूबने दिया, बिदा मत उस को कर दो,
विघ्नोन्मूलन करो उसे प्राणों का घर दो.

24. 6. 1951

जीवन के चौंतीस वर्ष अब पूर्ण हो गए.
हराभरा आकाश, धरा का सहज सलोना
रूप, अतुल है, आकर्षक है. स्नेह सँजोना
सब के उर का चरम लक्ष्य है. चिह्न खो गए

ऊष्मा के. नदियों की धारा दौड़ रही है
अप्रतिहत, दुर्दम्य. भले हो गँदला पानी
उन का, सिक्त धरा का हरितांचल है, धानी
ध्वजा उसी की लहरों से है; जोड़ रही है

जीवन के विभिन्न स्वर सम पर. अपने पिछले
मूक दिनों को देख रहा हूँ जिन के सब स्वर
गूँज रहे हैं कानों में, नयनों में सुंदर
रूप बसे हैं. आज मुझे लगते हैं छिछले

जो अगाध दुख के समुद्र थे. आओ आओ
हे नवीन, अत्यंत अपरिचित, मिल कर गाओ.

18. 7. 1951

पुत्र शाह के हुआ, महाकवि गए बुलाए.
कहा गया, तकलीफ़ आप को दी है, अपना
जान मान कर. अवसर ही ऐसा है, सपना
सत्य हुआ है. कहिए कृपया, जैसे आए,

कैसे क्या क्या करें. सेठ जी तो वेश्याएं
बुला रहे हैं. बीस हज़ार का बजट है. घर
की सब महिलाएँ भाँड़ मंडली पर न्योछावर
बीस हज़ार करेंगी. जो आएँ सो आएँ.

मुझ को यह सब नापसंद है. करें भी भला
क्या, अपना बस नहीं. आप भी जैसा कहिए,
कवि सम्मेलन कैसा होगा. कहिए, कहिए,
मौन किस लिए है. पैसे का—यही मामला

कुछ गड़बड़ है, फिर भी, सौ सौ क्या कम होगा;
कहा महाकवि ने झुक कर, यह अच्छा होगा.

23. 7 1951

दुख, जब जब जब तुम आए तब मैं ने स्वागत
किया तुम्हारा. नहीं निहारा मुड़ कर सुख को
छूट गया था जो पीछे. उस के ही रुख को
नहीं ताकने बैठ गया था. हे अभ्यागत,

मैं हूँ उन में नहीं, काट देते दिन आहें
भर कर जो, कहते हैं जो अच्छा होना था
वह सब कुछ हो चुका, जिसे समझा सोना था
मिट्टी निकला, धूप उड़ानेवाली राहें

अब आगे हैं, खाई, खंदक, नदियाँ, नाले
वन, पहाड़ दुर्गम आगे आने वाले हैं;
हाय, हाय क्या करें, नहीं हम पर वाले हैं
उड़ जाते, नीचे रह जाते सभी कसाले.

कठिन परीक्षाएं ले ले कर मित्र चिरंतन
मुझे मनुष्य बना दो, विजित न हो मेरा मन,

12. 8. 1

नहीं चाहता, कभी तरस खाओ, इस जन पर,
अब तक दुख ही दुख जिस ने देखा है जग में.
चलते चलते जब थकने लगता हूँ, मग में
ध्यान तुम्हारा आ जाता है, चंचल मन पर

क़ाबू चलता नहीं, जहाँ चाहे जाता है,
तन तो मिट्टी है, उस का क्या, कहीं पड़ा है,
कभी स्तंभ क्या चिल्लाता है जहाँ गड़ा है,
लोग समझते हैं कि गीत गायक गाता है.

गीत और सौरभ दोनों की गति न्यारी है,
आज जहाँ है, वहाँ नहीं कल. हमने देखा
है, दुनिया का तौर तरीक़ा रेखा रेखा,
जाने क्यों जीवन में इतनी लाचारी है.

लाचारी है, स्वतंत्रता है, अभिलाषा है,
और पराजय है, बंधन है, परिभाषा है.

13. 8. 1950

जीवन की राह बताऊँ क्या, चुपचाप चले
आओ, क्यों होते हो अधीर. इस में ऐसा
भय क्या है. जो कंटक हैं पथ के उन्हें दले
बस चलो. पहाड़ी रास्ता है, उस में कैसा

ही जानकार कोई हो, कुछ निश्चित कहना
है शक्य नहीं, है अभी दिखाई दिया अभी
खो गया घास की लहरों में, इस का बहना
है ठीक पहाड़ी नदी सा—अभी स्पष्ट, अभी

अस्पष्ट. नहीं धारा है, नहीं कहीं कल कल
की ध्वनि है, केवल है दरार या इधर उधर
है शिलाविभंगों की उठान, या खड़े अचल
उच्छ्राय मर्मरित देवदारु के कंप्र अधर

कुछ गीत अपरिचित भाषाओं में गाते हैं,
अर्थ तो नहीं ये कान दिव्य स्वर पाते हैं.

18. 8. 1951

यह विकट पहाड़ी रास्ता है, इस पर चलना
सब के पैरों का काम नहीं. मेरा मंशा
यह नहीं शक्ति की अवहेलना करूँ, कलना
कुछ नई करूँ. मैं तो केवल शुभ आशंसा

कर सकता हूँ. इस का चढ़ाव अथवा बढ़ता
जाने वाला इस का उतार कुछ कहे बिना
संकेत नहीं करता है क्या. जिस का चढ़ता
उत्साह हो, उठे, चले, कुछ करे. नहीं छिना

उद्योग के लिए जन्मसिद्ध अधिकार. खिले
जो फूल पार्श्व में हैं वृंतों के झूलों पर
झूलते हुए आमंत्रित करते हैं, न मिले
हों नयन जिन्हें दुर्भाग्य उन्हीं का. भूलों पर

दूसरे हँसेंगे, किंतु भूल करने वाला
है क्षण क्षण ज्ञानकोष अपना भरने वाला.

20. 8. 1951

जीवन की राह बताऊँ क्या, चुपचाप चले
आओ, क्यों होते हो अधीर. इस में ऐसा
भय क्या है. जो कंटक हैं पथ के उन्हें दले
बस चलो. पहाड़ी रास्ता है, उस में कैसा

ही जानकार कोई हो, कुछ निश्चित कहना
है शक्य नहीं, है अभी दिखाई दिया अभी
खो गया घास की लहरों में, इस का बहना
है ठीक पहाड़ी नदी सा—अभी स्पष्ट, अभी

अस्पष्ट. नहीं धारा है, नहीं कहीं कल कल
की ध्वनि है, केवल है दरार या इधर उधर
है शिलाविभंगों की उठान, या खड़े अचल
उच्छाय मर्मरित देवदारु के कंप्र अधर

कुछ गीत अपरिचित भाषाओं में गाते हैं,
अर्थ तो नहीं ये कान दिव्य स्वर पाते हैं.

18. 8. 1951

यह विकट पहाड़ी रास्ता है, इस पर चलना
सब के पैरों का काम नहीं. मेरा मंशा
यह नहीं शक्ति की अवहेलना करूँ, कलना
कुछ नई करूँ. मैं तो केवल शुभ आशंसा

कर सकता हूँ. इस का चढ़ाव अथवा बढ़ता
जाने वाला इस का उतार कुछ कहे बिना
संकेत नही करता है क्या. जिस का चढ़ता
उत्साह हो, उठे, चले, कुछ करे. नहीं छिना

उद्योग के लिए जन्मसिद्ध अधिकार. खिले
जो फूल पार्श्व में हैं वृंतों के झूलों पर
झूलते हुए आमंत्रित करते हैं, न मिले
हों नयन जिन्हें दुर्भाग्य उन्हीं का. भूलों पर

दूसरे हँसेंगे, किंतु भूल करने वाला
है क्षण क्षण ज्ञानकोष अपना भरने वाला.

20. 8. 1951

वाह, वाह भाई, तुम ने भी ख़ूब लिखा है,
क़लम चूम लेने की इच्छा होती है. यह
तो बतलाओ, कैसे लिख लेते हो. संग्रह
कितना है अनमोल तुम्हारा. मुझे दिखा है

सत्य, तुम्हारे जैसा नहीं आज कोई है.
गया प्रशंसक, और प्रशंसा गूँज छोड़ कर
लुप्त हो गई महाकाश में. फूल तोड़ कर
सूँघा कवि ने, फिर देखा, दुनिया सोई है

अपनी आकांक्षाओं के वैभव में जैसे
स्वप्न संचरण करती हो. उस को उधार का
ताँत ब्योंत करना है. जीवन के सहार का
सब प्रबंध करना है. यह सब केवल पैसे

से संभव है, यहीं बुद्धि उस की खोई है.
सचमुच, उस जैसा निरुपाय नहीं कोई है

24. 8. 1951

मुझे पटक कर, ज्वर, तुम को अभिमान बड़ा ही
होगा. सोच रहे होगे, इस का सारा बल
मैं निचोड़ लूँगा, फिर तो यह शीघ्र खड़ा ही
हो न सकेगा; स्वाध्याय, जीवन का उत्कल

मुक्त छंद यह बंदी होगा. यह तो संभव
कभी नहीं है, मैं अंगीकृत का परिपालन
करता जाऊँगा, तप से संकल्पों से भव
भाव रूप हो जायेगा. नियमित संचालन

जीवन का इस तरह करूँगा जैसे कोई
पक्का घुड़सवार अपने घोड़े का करता
है कि चेतनाएँ केंद्रित कर जागी सोई
मानव का मन-विश्वामित्र नई तत्परता,

नई लगन से, नई सृष्टि करने लगता है.
सो कर नित्य नवीन लोक में ही जगता है.

27. 8 1950

कहना मुझे बहुत कुछ है. पर सुनने वाला
कहाँ खोजने जाऊँ मैं. इतनी तत्परता
मुझ में है भी नहीं और मैं कहने वाला
भी वैसा हूँ नहीं, पेट फूला करता है
जिस का बिना कहे कुछ मन ऐसा करता है—
कहीं किसी से कुछ भी अपनी बीती कहना
अच्छी बात नहीं है. फिर भी डरता इतना
सूनेपन से सोच रहा हूँ, निष्क्रिय बहना,
मन की धारा में हो, ठीक नहीं है. रहना,
वही ठीक रहना है, जिस में तन का मन का
समाधान हो, लोग भी स्वयं सीखें सहना,
अलग अलग जो सदाचार है, अपने पन का

भाव बढ़े. विकसित हो भूतल पर मानवता,
जिसे चाहते हैं सब, मिलती है दानवता.

12. 9. 1950

मैं निराश हूँ; मुझे मनुष्य अभी तक कोई
नहीं मिला, दो पैरों वाले पशु तो कितने
रोज़ मिला करते हैं. अब तो वह धुन सोई
है जाने कब की, जिस में मैं प्रतिदिन इतने
स्वप्न-चित्र रचता था, रंग सजाता जितने
इंद्रधनुष में नहीं. नए वर्णों का उत्सव
उमड़ रहा था दिशा दिशा में. यह घट रितने
वाला नहीं जान पड़ता था. अक्षय आसव
उफन उफन कर कण कण को चिर कांक्षित वैभव
लुटा रहा था. जनसामान्य देखने वाला
नहीं समझ पाता था यह कैसे है संभव.
जीवन का मधु पात्र पात्र में जैसे ढाला

उस साक़ी ने, वैसे ही चल रहा दौर है,
नई घटाएँ हैं, दुनिया भी और और है.

12. 9. 1950

जीवन की दूसरी दिशा है मृत्यु, कुछ नहीं,
तो डर क्यों हो, जो होना होगा सो होगा.
अपना अर्जित ही तो जगती ने है भोगा.
जीवन में क्या 'हाँ' 'हाँ' है, क्या है 'नहीं' 'नहीं';

कौन इसे जानता नहीं, सब अपने मन से
परामर्श कर लेते हैं, फिर अनुकूलों को
पास चाहते हैं, सुदूरतम प्रतिकूलों को
करने की इच्छा रखते हैं. काले धन से

पानी सभी चाहते हैं, वज्र के लिए तो
कोई नहीं समुद्यत रहता है. इस कारण
वज्राहत है करुण. विपद् का शक्य निवारण
सब करते हैं, भारी भय को लिए लिए तो

मानव-जीवन का रथ गत्वर है पहले से,
झिझके सिमटे पड़े रहो तुम क्यों दहले से.

12. 9. 1951

तुम्हीं जानते हो मैंने कब कब क्या गाया,
मुझे याद भी नहीं. भला है जल्दी भूलूँ,
चिर अतीत को छोड़ आगमिष्यत् को छू लूँ.
मानस कितनी बार उमड़ ओठों पर आया

तुम से कुछ भी छिपा नहीं है. प्रश्न रख दिया
है तुम ने, क्या क्या गाया, क्यों गाया मैंने,
उत्तर क्या दूँ. चिड़ियों को देखा है, डैने
ले जाते हैं इधर उधर, क्या किया सा किया

स्वयं उन्होंने, इच्छा की; ऐसे ही कवि का
इतिकर्तव्य दिखाई देता है. यदि कोई
इसे न माने तो करना उस की दिलजोई
बड़ा कठिन है, तेज नहीं सीमित है रवि का.

तुम मनुष्य हो, तुम समाज हो, अखिल विश्व हो,
तुम से बाहर कवि है ही क्या, गया निःस्व हो.

13. 9 1951

दुख में आँखें भर आएँ, झर जाएँ, चाहे
सूनापन प्राणों की गहराई में जा कर
पैठ जाय, बाहर केवल साँसें आ आ कर
पीड़ा कह जाएँ, जो कुछ हो. जो न निबाहे

जीवन की दुर्दाम नदी से अपना नाता,
रोता चिल्लाता केवल रह जाय किनारे
तट के तरु सा, दुनिया में ऐसे बेचारे
भी होते हैं. अपने ऊपर रोता गाता

चला गया जो, उस के आँसू व्यर्थ झर गए,
व्यर्थ भार था दुनिया पर वह. यदि औरों की
पीड़ा से विचलित होता तो उन व्यौरों की
उलझन में पड़ता क्यों. थोड़ा काम कर गए

वे आँसू जो औरों के तप ताप पर झरे,
जीवन के पौधे इस कारण हरेभरे.

18. 9. 1951

प्रेम कुछ नहीं है, पैसा है. पैसे वाला
प्रेमी है, उदार है, सुंदर है, दानी है.
प्रेम हृदय का धन है, कोई पीने वाला
ही ऐसा कह सकता है. यह नादानी है
ऐसी, जिस का अंत नहीं है, लासानी है
इस दुनिया में. शुद्ध मनोरंजन की बातें
और बहुत सी हैं. अब तो जन जन ज्ञानी है,
प्रेम पुराना पागलपन है. इस की घातें
नहीं दिखाई देती हैं. अब वे बरसातें
आँखों में ही सूख गई हैं, जो कराह थी
लुप्त हो गई, लहरीली राका की रातें
नीरव आती जाती हैं, जो अगम चाह थी

सुगमतया हिल्लोलित होती नहीं किसी दिन,
पल का पैसा मुसकानें लेती हैं गिन गिन.

19. 9. 1950

जैसे तुम को छू लेता हूँ वैसे ही क्यों
बुद्धि तुम्हारी कभी नहीं मैं क्यों छू पाता,
जितना चलता हूँ अंतर है बढ़ता जाता.
क्या रहस्य है, इसे तुम्हीं चाहो तो ज्यों त्यों

सुलझा सकते हो. अख़्खा:, यह किस चक्कर में
उलझे हो तुम, यह भी कोई बात है भला,
कारबार दुनिया का जैसा रहा है, चला
जाता है. क्या रस पाओगे, तुम टक्कर में

पत्थर से, सिर ही फूटेगा. और भी कई
काम पड़े हैं दुनिया—धंधा, बीबी-बच्चे
इष्ट-मित्र हैं; उन को देखो भालो, सच्चे
मनुष्य का कर्तव्य यही है. तुम नई नई

अगर समस्याएँ कातोगे, क्या पाओगे,
जोड़ोगे हिसाब तो पीछे पछताओगे.

19. 9. 1951

इस में क्या है, मेरे और आप के दिल की
धड़कन है, कहना चाहें तो कविता कह लें,
इस की धारा में बहना चाहें तो बह लें.
देख सकेंगे यहाँ धूपछाँही झिलमिल की

आभा. कवि तो हुए मंत्रद्रष्टा ऋषि, उन के
बाद हुए मुनि वाल्मीकि, फिर व्यास हुए, फिर
कालिदास आए, फिर तुलसीदास हुए स्थिर
यशस्काय से, कवि रवींद्र ने आ कर चुन के

स्वर-सुमनों का हार पिन्हाया. औरों ने भी
गान किया है, वंदनीय हैं. आज भारती
की कितने जन प्रणत भाव से मूक आरती
करते हैं, कुसुमों की स्तुति की भौंरों ने भी.

जो रसज्ञ हैं, इसे उन्हीं के लिए लिखा है,
जो अजीर्णग्रस्त हैं, कहेंगे इस में क्या है.

19. 9 1951

तुम पहचान न पाओ चाहे, रूप नया है,
साँप दुखों के लिपटे हुए गले से हर दम
रहते हैं, लांछन के बिच्छू भी तो दुर्दम
डंक मारते रहते हैं, जो बीत गया है

उसकी चिंता नहीं और क्या आएगा भी
उस चिंता से. बहुत बखेड़ा कौन उठाए
अपने सिर पर, चरबँहियाँ का नाम कमाए,
हँसने और हँसाने को. पुआल से डाभी

कहाँ हुई है. हूँ त्रिशूलधारी मैं भी तो
लेकिन इस से स्वयं विद्ध हूँ. चाहे जैसे
तुम जग जीतो, विजय सुलभ हो, जैसे तैसे
अपना झंडा फहराओ, भर चलो, न रीतो.

गरल कंठ में नित्य शिवोऽहं कहता कहता,
देश रहा हूँ निराधार भव बहता बहता.

22. 9. 1951

मेरे कंधों पर चढ़ चढ़ कर जिन लोगों ने
स्वर्ग निहारा, उन से इतनी ही विनती है,
वैसे दुनिया भला किसी की कब सुनती है,
फिर भी कहने में क्या घाटा. संयोगों ने

मुझे जहाँ का तहाँ रखा, चुपचाप पड़ गया,
शीश उठाए, आसमान को रहा देखता,
कौन सितारे आए, इस का है किसे पता
मैं पहरू था, देखा किस से कौन लड़ गया

किस धारा में. हारा नहीं, स्थान पर अविचल
अपने रहा. यहाँ मृग, मानव, जो जो आए
उन्हें चढ़ा कर चोटी पर सब दृश्य दिखाए
आसपास के. मैं गंगा का पिता हूँ अचल.

रुचे न रुचे हिमालय, गौरव-मान तुम्हारा
करता है कल्याण, और सम्मान तुम्हारा.

23. 9. 1951

टर्र टर्र कर काशी-कूप निवासी बोला,
नया क्या हुआ है. कुछ हो तो नहीं हुआ है.
कौन साधना है यह, धोखा और जुआ है,
खोला जब मुँह तथ्योद्घाटनार्थ ही खोला

है हम ने तो. छोड़ नहीं सकते परंपरा
का अंचल हम. रेल, विमान, तार, ऐटम बम
विश्वासों को किसी तरह से कुछ भी कम
नहीं कर सकेंगे. साक्षी संपूर्ण है धरा.

पुरखों ने जो करना था, कर दिया. और क्या
शेष रह गया. शास्त्र दे गए. उस को बाँचो.
उस के मर्यादित गंभीर ताल पर नाचो.
वही आम है जो सौरभ से भरा बौर था.

गुन के बल से चली घड़ारी घर्र घर्र कर,
सत्य यही है, साधक बोला टर्र टर्र कर.

24. 9. 1951

पुनः शरद ऋतु आई है, शोभा छाई है
चारों ओर, रंग कण कण का बदल गया है.
वर्षा में चल थकी हवा कुछ अलसाई है
नहीं नृत्य की द्रुत तरंग है. सकल नया है

साज सिंगार प्रकृति के तन पर. अब उनया है
मेघों का दल श्याम नहीं खंजन आए हैं
दूर देश से. नीड़ बनाने लगी बया है
पुरइन के पत्तों पर सरसिज मुसकाए हैं,

सर शोभित हैं और कुईं के दिन आए हैं.
चाँद मोद में है अकास में. गंगा गाती
बहती जाती है. बयार ने उलझाए हैं
अपने आँचल रजनीगंधा में, इठलाती

चलती है. कवि देख रहा है सब कुछ नीरव,
नई लहर है, नये प्राण हैं, नया नया भव.

26. 9. 1950

भाई, दुख के चक्कर में हम सभी पड़े हैं.
कितना कहें और कितना न कहें. इस का तो
निश्चय कर पाना मुश्किल है, अगर हुआ तो
मौन भला है. विपत्तियों से भिड़े लड़े हैं

जो, उन को अच्छा है अपने घाव दुराएँ,
उघाड़ना तो ठीक नहीं, दिन कट जाएँगे,
अपनी जगह न चूकें जो पीछे आएँगे
समझेंगे. अच्छा होगा, सब लोग छुपाएँ

अपने दुख की गाथा, हँसना और हँसाना
अच्छा है. क्या लाभ चार दिन पा कर रोए
और आँसुओं से प्रतिदिन अपना मुँह धोए
हँसें, उचित है दुःख भूलना और भुलाना.

साँस साँस में दुख ही दुख है, ऐसे दुख की
चिंता करे कहाँ तक कोई गति न' विमुख की.

26. 9. 1951

पहली नज़र बता देती है, सुख ने इस की
दृढ़ काया को नहीं रचा है. पहला स्वर ही
कह देता है कि यह सभ्यता का वह स्तर ही
नहीं देख पाया है, भुवन-विदित है जिस की

मर्यादा, ग्राहकता, मृदुता, मोहक पालिश.
एक आँच से भरी हुई है इस की वाणी,
जिसे नहीं सह पाते कभी सभ्यतम प्राणी
एक दंड भी. यह केवल दलितों की नालिश

सुनता है, उन की कहता है. यह धनियों का
कुछ भी ध्यान नहीं करता है. यदि यह ऐसा
न करे और तरह दे दे तो इसको पैसा
न घटे; यों कहता है, गायक दल बनियों का.

जो हो, किंतु त्रिलोचन जैसा रह आया है
वैसा उस ने जान बूझ कर अपनाया है.

27. 9 1951

हवा गा रही है तरु दल पर, नीरवता में
घुली हुई चाँदनी किसी को खोज रही है.
बसी चेतना है इस बढ़ती शीतलता में
मंद वायु पर चढ़ कर जो चुपचाप बही है.
यह गतिमय नीरवता कोई बात कही है
कहीं किसी ने. कोई कैसे इस को जाने
यह अधीरता मिली कहाँ से, बात सही है
या नहीं ? इसे किसकी भाषा सुन कर माने
कोई जन, प्रामाणिकता किस घर पहचाने
जा कर बसी हुई है. सब कर्तव्यमूढ़ हैं,
शिथिल स्तब्ध हैं, कोई भी क्या मन की ठाने
इस दुनिया में. सभी यहाँ अतिशय विमूढ़ हैं,
भले भलाई बुरे बुराई में. इस जी की
किस से कहूँ, चाँदनी भी है फीकी फीकी.

28. 9. 1950

हँस कर, गा कर और खेल कर पथ जीवन का
अब तक मैंने पार किया है, लेकिन मेरी
बात और है, ढंग और है मेरे मन का;
उसी ओर चलता है जिधर निगाह न फेरी
दुनिया ने. दुःखों ने कितनी आँख तरेरी,
लेकिन मेरा क़दम किसी दिन कहीं न अटका—
घोर घटा हो, वर्षा हो, तूफ़ान, अँधेरी
रात हो. अगर चलते चलते भूला भटका
तो इस से मेरे संकल्पों को कुछ झटका
लगा नहीं. जो गिरता पड़ता आगे बढ़ता
है, करता कर्त्तव्य है, उसे किस का खटका;
पग पग गिन कर पर्वत शृंगों पर हूँ चढ़ता.

आभारी हूँ मैं, पथ के सब आघातों का,
मिट्टी जिन से वज्र हुई उन उत्पातों का.

30. 9. 1950

कैसे हो तुम, पूजा पाठ नहीं करते हो
कभी. न आए तुम्हें, दूसरों से ही सीखो,
धर्म कर्म से रहना अच्छा है. फिरते हो
इधर उधर बेकार, न भाए अगर किसी को
चाल तुम्हारी, कुछ कह दे, तो बोलो, जी को
खेद न होगा. बोला मैं, "हाँ, मुझे खेद तो
कभी न होगा, कमर कसो तो तुम्हीं सभी को
इन की उन की कहते पाओगी, अभेद तो
संज्ञाओं को छोड़ मिलेगा, अनिर्वेद तो
झलकेगा उत्साह में, प्रखरतम वाग्धारा
तुम्हें बहा ले जायेगी, भक्ति का वेद तो
चला जायगा पुनः रसातल, कूल किनारा

नहीं मिलेगा, रहने दो जो जैसा चाहे
अच्छा होगा किसी तरह शिष्टता निबाहे"

1. 10. 1950

जिस के सिर पड़ती है वही जानता है पर
सहानुभूति कभी जग में बेकार नहीं है.
किसे अभिलषित का जीवन में मिलता है वर,
किस के पथ में दुर्गम पारावार नहीं है.
बिना संतरण किये किंतु निस्तार नहीं है
अपनी ही बाँहों से. कानी उँगली का बल
बच्चों को बहलाता है, आधार नहीं है
जिसे स्नेह का, निस्सहायता उस को पल पल
वात्याचक्र विमूढ़ पोत सा भय से चंचल
करती है; संचित विश्वास बिखर जाता है
बालू के टीले सा, भय के भूतों का दल
उसे घेर लेता है, विरला ही गाता है

कोई ऐसे क्षण में. कनगुरिया का वह बल
जिसे सहानुभूति कहते हैं स्फूर्ति है नवल.

1. 10. 1950

कहा जियावन ने "नेहरू जी वोट माँगने
निकले हैं. अब बात नहीं वह, पहले जैसी.
हथियारों से घिरे घिरे हैं. उन को ऐसी
क्या शंका है. जम कर बोले, कहा, जागने

लगा हूँ इधर. किसी तरह अंग्रेज़ गये हैं
रोटी कपड़ा सब को किसी तरह देना है.
नाव पड़ी है लहरों में, उस को खेना है.
कुछ ऐसे भी साथी हैं जो फिसल गये हैं,

शर्मिदा कर दिया उन्होंने हम को. लेकिन
अब वह बात न होगी. सब कुछ नया करेंगे.
यह ख़ाली भंडार भरेंगे. विपद हरेंगे,
वे नेहरू जो अपनों को भरते हैं गिन गिन.

पंख लगा कर कौवा फिर फिर मोर न होगा
एक बार हम लोगों ने भोगा सो भोगा."

2. 10. 1951

जीना सब से कठिन काम है; सचमुच जीना
केवल साँस नहीं लेना है. इस से ऊपर
कुछ करना है. कुछ करने में ही इस भू पर
हाँफा पकड़ लिया करता है. और पसीना

आ जाता है. हँसी खेल की बात नहीं है
कहलाना इनसान. देवता तो कितने ही
दुनिया में होंगे कि खोजने में जितने ही
गहरे पैठो, जान पड़ेगा. घात नहीं है

किस को अपनी और अधिक अपने लोगों की.
इस सीमा को कहाँ किसी ने कितना तोड़ा,
कभी बंधनों ने किस मन को पल भर छोड़ा,
व्यर्थ हुआ पुरुषार्थ, विजय है संयोगों की.

साँसें लेना और और ही कुछ है जीना
पड़ा बीच में है कर्मों का पर्दा झीना.

3. 10 1951

काशी है यह, गंगा जी हैं, विश्वनाथ हैं,
दुर्गा हैं, संकटमोचन हैं, और क्या नहीं
है. खिच कर कोने कोने से देश के यहीं
जन सिमटे हैं. खेने वाले वही हाथ हैं
जो मनु की नौका खेते थे, प्रलय काल की
चिंता सब के मुख पर है. दुनिया की सारी
वस्तु यहाँ मिल जायेगी, नहीं है लाचारी
किसी बात की. नई पुरानी चाल ढाल की

कहाँ कमी है. इधर विश्वविद्यालय सुंदर
हरा भरा है, उधर दालमंडी की शोभा
रात चौगुनी होती है, रसिकों का लोभा
हुआ हृदय ही जान सका है निशि के अंदर.

भले बुरे, गुंडे सज्जन, सब यहाँ पड़े हैं,
शव हिंदू के जले मुसलमान के गड़े हैं.

3. 10. 1951

मुझे रूप वह नहीं मिला है जिस से कोई
सुंदर कहलाता है, लेकिन हृदय मिला है
जिस से मनुष्यता का निर्मल कमल खिला है,
सूझ समझ है, खाता आया अपनी पोई

अब तक तो मैं. कोई नहीं शिकायत आई
इन ओठों पर कभी किसी की. मैं ने देखी
अपनी निर्बलता तुरंत ही. देखा देखी
कोई काम न किया आज तक. मुझ को भाई

नहीं कभी वह जीवन धारा जिस में पड़ कर
टीम टाम ही देखा करती हैं दो आँखें,
आडंबर पढ़ता है. कभी सुनहली पाँखें
नहीं बटोरीं, रहा जगह पर अपनी लड़ कर.

बुद्धि हो, हृदय हो, संयम हो, बल विवेक हो,
कौन कमी है, गुंजित मन में मौन टेक हो.

5. 10. 1951

कभी कभी वह शून्य हृदय वेधा करता है
जो भीतर वाहर छाया है, जिस का आदी
यह मन है, जिस की स्वर-लहरें अविसंवादी
हैं, जिस की शक्ति के सामने जग डरता है
शीश उठाते, निखिल पराक्रम को हरता है
पल भर में, हो जाते हैं सव दृश्य विषादी,
मन:प्रसादन जो करते थे, उस आबादी
के पहले परिचय में सूनापन भरता है.

जो सुवर्ण का पात्र अमृत से भरा हुआ है,
स्वेच्छापूर्वक, विष से उन को कौन भरेगा,
जो आनंद तरंगों से ही हरा हुआ है
उस भव को विषाद से आप्लुत कौन करेगा;
जीवन भावी अंधकार से डरा हुआ है,
उस का घोर तिमिर करुणा कर कौन हरेगा.

6. 10 1950

काशी मुझे गाँव सी लगती है, शहराती
हवा यहाँ कम से कम है. सब आसपास से
घुले मिले रहते हैं. अपना रंग दिखाती
प्रकृति मनुष्यों में है, धरती से अकास से

सहज मुक्त संबंध बना है. चोरी डाका
यहाँ न हो यह बात नहीं है. दुर्गुण सारे
कम बेशी हैं. जाग रही है इस की साका
तीन लोक से न्यारी होने में. जो हारे

हैं वे जन भी मस्त मिलेंगे. ऐसी मस्ती
और कहीं तो नहीं मिलेगी, चना चवेनी
और गंगजल के मस्ताने हैं; यह हस्ती
और कहाँ है, झंखें तीरथराज त्रिवेनी.

रोज़ रोज़ ताज़ा है कभी नहीं है बासी
आन बान में, कबिरा तुलसी की यह काशी.

7. 10 1951

"काशी में अब कौन" निरुत्तरता की ही
आशा में, सम्मुख अमरूद इलाहाबादी
लगा देखने, सुना चौंक कर, "जी आबादी
औरों की भी है, वैसे पहले तो थी ही

लेकिन कुँजड़े इधर बढ़े हैं. क़दर आप की
ज़रा वढ़ गई है, दिन बदले हैं, लँगड़े की
पूछ नहीं है. स्थिति अब नहीं रही झगड़े की.
बदल गई है अब वह भाषा पुण्य पाप की,

पहले की." अमरूद इलाहाबादी बोला,
दुनिया के फेन की छवि-सुरभि बदल रही है,
मधुर चाँदनी की धारा फूल सी बही है,
अब सब का सोना तुलता है तोला तोला.

काशी और इलाहाबाद छोड़ कर अपना
अंचल झाड़ो, देखो, क्या सच है, क्या सपना.

7. 10. 1951

काशीपुरी पवित्र है इसी लिए यहाँ पर
दुनिया की गंदगी इकट्ठा मिल जाती है;
ओर छोर से लोग छोड़ने पाप जहाँ पर
पहुँचें, काशी दशा वहाँ की दिखलाती है.

म्युनिसिपैलिटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड करें तो क्या क्या
करें, हुई नैष्कर्म्य सिद्धि है अनायास ही;
मेम्बर जेबें भरते हैं, इस में भी क्या क्या
कष्ट उठाने पड़ते हैं, प्रत्येक श्वास ही

उन का बतलाता है. इस से अधिक काम की
बात न पूछो, मंचों पर से बकते बकते
जीभ खिया जाती है इज़्ज़त कहाँ चाम की
है, करने वाले करते हैं थकते थकते.

जो सब का है कभी किसी का कब होता है
सार्वजनिकता में अपनी सत्ता खोता है.

7. 10. 1951

हम तुम दोनों आज दूर हैं, चाहें भी तो
पास नहीं आ सकते हैं, वैसे कहने को
कुछ भी कह लें, मन समझा लें, पर रहने को
साथ, अजी छोड़ो भी. अपने मन की भी तो
सुननी ही पड़ती है, फिर बाधाएँ भी तो
एक एक से बढ़ कर हैं. वैसे बहने को
बाढ़ आँसुओं की क्या कम है, अब सहने को
शेष क्या रहा, आए जो कुछ, आए भी तो.

बसी हुई दुनिया है यह, वीरान नहीं है,
लेकिन अपना मन सूनेपन में खोया है
क्या जाने क्या बात हो गई, अगर कहीं है
कोई मेरा तो मालूम किसे. ढोया है
जो अस्तित्व भार, उस की विश्रांति यहीं है
या आगे है, जीवन का फल तो बोया है.

8 10. 1950

हँसता है अकाल तारों के दाँत निकाले,
मन किसान का मेरा, चैन नहीं पाता है.
'हरे कुंज में आना' बार बार गाता है
नगर निवासी प्रेमी. पड़ा नहीं है पाले

चिंताओं के. जब तक साँस बाप-दादों की
चलती है तब तक उस को क्या करना धरना
है. क्यों मौज न करे विरह में आहें भरना,
हाथ कलेजे पर रखना, मन में यादों की

माला जपते रहना, खेतों की हरियाली
रहे न रहे, उसे क्या. उसका खाना पीना
चल जाता है, फिर क्या. गारे कौन पसीना
अभी चैन की वंशी बजती है मतवाली.

ताक रहे आकाश, नहीं जलधर की छाया
कहीं दिखाई देती है, भय तन धर आया.

17. 10. 1951

जीवन से मैं ने सीखा है और दिशा भी
पाई है तो एक इसी से; ऐसा कहना
सहज सत्य है, निराधार झरने का बहना
नहीं दिखाई देता है. दिन और निशा भी

इस जीवन के संगी हैं, इन की रंगीनी
छाई है इस पर; पूर्वज कवि और चितेरे
कवन और चित्रण करने में साँझ सबेरे
के चक्रों को भूल गए थे. झीनी झीनी

जो चादर बीनी विचार से उस को देखें
अचरज तो होता है अब भी, लेकिन उन का
अध्यवसाय सफल प्रस्तोता है उस धुन का
युग की साँस साँस में थी जो, मेरे लेखे.

मैं अपने युग का, समाज का, जन जीवन का
अभिव्यक्तिमय एक व्यक्ति हूँ, जाग्रत मन का.

26. 10. 1951

हारे खीझे मन से मैं ने कभी कहा था,
'अगर जन्म लेने में मैं लाचार न होता
मुझे चिरानीपट्टी से कुछ प्यार न होता';
पहला असंतोष जो कुछ भी रहा सहा था

आज नहीं है. क्यों, इस का तो समुचित उत्तर
दे पाना आसान नहीं है. द्वेष आपसी
नहीं घटा है, दाँजारेसी बढ़ी पाप सी
है, दिन पर दिन. पूरब, पच्छिम, दक्खिन उत्तर

छोटे छोटे खेत, बाढ़ मेंड़ों की, अपनी
अपनी चिंता; मेल जोल से काम नहीं, क्या
इस से होगा, काट कपट ठाकुरों की, बढ़ा
जाने वाला खेवट, क्षुद्र स्वार्थ की झपनी.

लुटे सताए हुए आदमी जहाँ पड़े हों,
अच्छा हो जाग्रत जन उन के लिए खड़े हों.

28. 10. 1951

कोई समझ न पाए अगर तुम्हारी बोली
तो उस बोली का मतलब क्या, मौन भला है.
जीभ खुले तो बात खुले. आदमी छला है
युग युग का. भाषा का इस जीवन से चोली

दामन का साथ है. अधिक दिन उसे पहेली
नहीं बना कर रखा जा सकेगा. भाषा के
साथ न' खेल अधिक चल सकता है, आशा के
रूप उतारेगी लग कर, दिन रात सहेली

जिन की रह आई है, समझ बूझ से लिपटी
है घर, बाहर, खेतों और कारखानों में
जीवन के लमहे लमहे के पैमानों में
नपी तुली है, कटी खरादी है, यों निपटी.

भाषा ले लो सजी सजाई बनी बनाई
मत बेवक़्त बजाओ कोशों की शहनाई.

28 10. 1951

सोचा था मन ही मन यह गाऊँ वह गाऊँ,
जो स्वर निकला, देखा उसमें गान नहीं था.
कैसे, क्या हो गया, तनिक भी ध्यान नहीं था
मुझे. आ गया सकते में. सोचा अब जाऊँ

किस पथ से. गायकों की अलग राह गई है,
चरण चले, चल पड़ा. ठहर कर पीछे देखा,
चिह्न चिह्न में गीतों की प्रकाशमय रेखा
उभर उठी है. समझा, यह तो बात नई है.

गीतों में यह बात नहीं थी इससे पहले.
प्रिय था और प्रिया थी, उस वियोग का भय था
जो प्रेमियों को हुआ करता था न' उदय था
जिस में सुख का, जड़ चेतन रहते थे दहले.

बदल गई है इधर गान की पहली धारा,
फूल धूल दोनों में ही जीवन है प्यारा.

29. 10 1951

कवि तो मानव-आत्मा का शिल्पी होता है,
मानव-आत्मा विपुल बंधनों में जो जकड़ी
रहती है. जिस तरह से बुढ़ापे की लकड़ी
के बल पर कोई बूढ़ा तन को ढोता है,

उसी तरह से होता है साहित्य सहारा
सब के मन का. जो इस से बेख़बर रहा है,
उस ने किसी समय ऐसा कुछ नहीं कहा है
जिस से वह जन जो अपने पथ पर थका हारा

जैसे तैसे चला जा रहा है, कुछ पाए
अवलंबन, धैर्य, बल, प्रेरणा; लेकिन इस की
धारा आदेशों उपदेशों से कुछ खिसकी
बहती है, जीवन से सब को जीवन आए.

जीवन में ही प्रगति भरी है, अलग नहीं है,
जो बाहर है वस्तु तत्त्व से दूर कहीं है.

30. 10. 1951

तुम हिंदू हो? कैसे हिंदू हो? क्या जाने.
धर्म कर्म हिंदू का सब कुछ छोड़ दिया है,
पुरखों की मर्यादाओं को तोड़ दिया है,
चोटी और जनेऊ तज दी. अब मनमाने

काम किया करते हो. सब भरभंड कर दिया
कुछ भी तो अपनापन होता, फरक चाहिए
हिंदू किरिस्तान में, दुश्मन को सराहिए
यदि उस में कुछ अच्छाई हो. यहाँ भर दिया,

पानी तुम ने नाक में, कहूँ क्या. जो अच्छा
तुम्हें लगेगा वही करोगे. फिर भी अति तो
नहीं सही जाती है, अपनी अपनी मति तो
सब को भाती है, लेकिन सच्चा है सच्चा.

ज़रा मुसलमानों को देखो चाल चलावा
अपना नहीं छोड़ते हैं, रखते हैं दावा.

1. 11. 1951

सच्ची बात बुरी लगती है. सच्ची सच्ची
कहने वाला मुश्किल से मिलता है, सुनने
वाला और अधिक दुर्लभ है. प्रकरण चुनने
में धोखा होता है, पथ पर प्राय: कच्ची

बातें सुनने को मिलती हैं. अपनी अपनी
लोग हाँकते हैं उमंग से, अन्य जनों को
भ्रांत और पागल कहते हैं, पेड़ तनों को
कौन देखता है. रचना जैसी भी हो. छपनी

से लेखक आत्मालोचन करने लगता है,
दोष और गुण खुलते हैं, लिख कर रखने से
ज्ञात नहीं होता प्रभाव, केवल चखने से
स्वाद बताया जाता है, विवेक जगता है

सच कड़वा हो, मर्मस्पृक् हो, तो भी अच्छा;
कभी नहीं है यह मीठी बातों का लच्छा.

2. 11. 1951

तुम ने जो कुछ कहा, हृदय को छेद रहा है,
घूमघाम कर मन फिर उसी बात पर आता
है, यह वह घुन है प्राणों का गेहूँ खाता
है जो. इसी बात का मुझ को खेद रहा है

जिस की आशा न थी वही तो तुम ने आख़िर
कह डाला, मालूम नहीं था कुछ भी जैसे
तुम्हें. हटाओ, इन बातों में क्या है. ऐसे
ऐसे विषयों से पथ पर चलते जो घिर घिर

रुक जाया करते हैं, वे कर चुके. अब उन्हें
और सताना ठीक नहीं. बहती है धारा
तोड़ मारती हुई जगज्जीवन की, हारा
हुआ बैठ जाता है नीचे, ज्ञात है तुम्हें.

हँसकर उड़ा दिया, जो कुछ आया, सब झेला,
अभी क्या हुआ है, अब होगा मेलाठेला.

3. 11. 1951

कहा कुछ नहीं नीरव तारापथ ने, सुन ली
बात तुम्हारी, और वृक्ष वह जड़ पर जिस की
बैठे बैठे, की उधेड़बुन, उस की इस की
बातें सोचीं, तूफ़ानों के पीछे चुन ली

एक दिशा, फिर चलने लगे सतेज, अकेले
रुके नहीं, आसन्न आपदाओं के डर से.
जिसे, सेज फूलों की नहीं मिली हो घर से
वह बाहर किस को रोएगा. दे दे ले ले

की चिंता में जो डूबा है, वह उतराना
क्या जानेगा. नहीं भयानकता राहों की
पहले वाली है, लेकिन अब भी ब्याहों की
रंगीनी न मिलेगी, खो खो कर है पाना.

महाकाश का मौन उतर अधरों पर आए
सागर का कल्लोल तुम्हारे उर में छाए.

3. 11. 1951

चिंता छोड़ो, यह कर दूँगा वह कर दूँगा
कहने वाले बहुत मिलेंगे, लेकिन बहने
वाले को वे कभी तीर लाएँगे, गहने
पर धोखा ही होता है. सलाह में दूँगा

कभी नहीं, ऐसे जालों में फँसो फँसाओ.
अपने ही कर बल का करो भरोसा, झूठी
आशाओं से छलो न अपने को, यदि रूठी
है तक़दीर मना लो, औरों को न हँसाओ

अपने ऊपर. औरों का दुख गाने वाला
भला कहा जाता है, इतनी सुलभ भलाई
है; कोई भी ले ले वह हाथ की ललाई
मेंहदी की है, जग है नाम कमाने वाला.

जाओ पेड़ रूख से अपना दुख गा आओ,
तजो भरोसा, द्विपदों से मत धोखा खाओ.

3. 11. 1951

वर्षा हुई घनी छाया में खड़े हो गए,
घाम हुआ तो छाँह ताक कर पांव वढ़ाए
सड़कों पर, धुन की चोटी पर चित्त चढ़ाए
चलते रहे. कहे कोई कुछ, नहीं खो गए

कहीं भीड़ में या निर्जन में: देखाभाला
अपना पथ, सब अगल बगल. भरसक कब चूके,
देखे दृश्य बदलते कितने द्यौ के भू के,
केसरिया बाने में थे हथियार न डाला

कहीं किसी के आगे. भय से और लोभ से
विचलित नहीं हुए, क्यों होते. ऐसा क्या था
जो वढ़ते पैरों को पीछे लौटा लाता,
सिकुड़े अपने आप में नहीं कभी क्षोभ से.

बुद्ध आदि के जिस भू ने पदचिह्न सजाए,
सावधान उस पर चलता था, दाग़ वचाए.

3. 11. 1951

सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के लिए
मैं ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को,
जिस को नेता लूट रहे हैं, कह कर, ताको
मत, हम तो हैं ही. अत्यधिक विमोह के लिए

क़ौल क़रारों की बौछार किया करते हैं
इन से उन से सब से, दिन को और रात को.
बाल भी नहीं समझ सके जो कही बात को
अपनी, अब वे सच्चाई का दम भरते हैं.

बीज क्रांति के बोता हूँ मैं, अक्षर दाने
हैं, घर बाहर जन समाज को नए सिरे से
रच देने की रुचि देता हूँ. घिरे घिरे से
रहना असम्मान है जीवन का अनजाने.

अगर घुटन हो, प्राण छटपटाएँ तो घेरा
तोड़ फोड़ दो, क्यों कि हुआ है नया सबेरा.

5. 11. 1951

नई पढ़ाई अजी पढ़ाई है, कुछ लोझा
नहीं कि दौड़े, लूट लिया यों आनन फ़ानन
काम हो गया. सचमुच तुम भी मियाँ त्रिलोचन,
ऐसे हो कि क्या कहें, वस. जव सिर पर बोझा

आया लगे काँखने, तुम को लगा सूझने
तीनों लोक और वह सारी अक्की वक्की
भूल गई. औरों ने माना तुम को झक्की
परले दर्जे का. रन में है काम जूझने

का ही, पहले सोचा होता, नहीं तमाशा
है यह. तुमने समझ लिया था, यहाँ चवेना
बँटता है, मुँह को जी आ जाता. है, लेना
देना हो जाता है, सुरसा हुई निराशा.

पाँव लड़खड़ाए सीमा आँखों में आई,
पथिक छटपटाया, मन की मन ही में छाई.

8 11. 1950

छूट छूट कर भी कविताओं की रंगीनी
इतनी रह ही जाती है जो चीज़ सामने
आँखें नहीं पकड़ पाती हैं वही थामने
लगती है मन. कवि को कड़वी घूँटें पीनी

पड़ती हों चाहे जितनी पर कविता उस की
कहाँ दिखा पाती है वह तीखी कड़वाहट
जो उस की नस नस में है, मन में चिल्लाहट
चिंताओं की जो है, नहीं चाय की चुस्की

है वह. हल्के फुलके मन से पढ़ा, बढ़ गए,
कहा, बतंगड़ किया बात का इस ने, इसको
ज्ञात नहीं होनी अनहोनी किस को किस को
लिखना किसको नहीं, कूद आकाश चढ़ गए.

कवि का जीवन उसकी कविता एक, नहीं दो
धूप छाँह का मेल मिलेगा जहाँ कहीं हो.

9. 11. 1951

मेरी भी तक़दीर बाँच दो, हाथ बढ़ाया
बैताली ने. हाथ देखने वाला बोला,
सोच न कर, जिस ने सिरजा, तेरा मुँह खोला,
वही तुझे देगा. लड़कों ने उसे चढ़ाया

चिढ़ की शाखा पर, जब भी देखा चिल्लाए,
सोच न कर जिस ने सिरजा, तेरा मुँह खोला,
वही तुझे देगा. सुन सुन कर धीरज डोला
बैताली का, लड़कों पर बूढ़े झल्लाए—

क्या बकते हो. घर बाहर क्या यही पढ़ा है.
बेचारे बैताली ने क्या भला बिगाड़ा
है, जो दुष्टो, तुम सब मिल कर उसे पहाड़ा
रिस का पढ़ा रहे हो, मन बेतरह बढ़ा है.

बैताली जब कुछ करता है तब खाता है
और किसी दिन वह आराम नहीं पाता है.

11. 11. 1951

तुम ने अहंकार खोया है, और इस समय
ऐसा लगता है कि मिला था जो कुछ खाना
वह भी गुम हो गया. आज तुम ताना बाना
मन का बुनते हो चिंतित, अवसन्न, जड़ सभय

हो. निश्चित वायुमंडल में उठने वाली
सूक्ष्म तरंगों को बैठे, खोए खोए से,
देखा करते हो बहुधा सोए सोए से
चौंक चौंक उठते हो. प्राणों की हरियाली

लुप्त हो गई. मन उदास है. उठो, सँभालो
अपने को, मन को समझा लो. हुआ सो हुआ.
अब खेलूंगा नई चाल से जगत का जुआ,
स्थितियो, गेंदा पटक पटक कर और उछालो.

पौरुष बुद्धि, उपाय तुम्हारे गए नहीं हैं,
दाँव पेच तुम को दुनिया के नए नहीं हैं.

12 11. 1951

झेला नंगी पीठ ज़माने का वह कोड़ा
सर्र सर्र जो पड़ता रहा न रुकना सीखा
जिस ने, मैं ने भी कब संचित धीरज छोड़ा
पल भर को भी. ताजा है मुझ को वह तीखा

माँसपेशियों का मंथन, उस का क्या कहना,
चेतनता का रक्त बूंद बन बन कर धीरे
धीरे बहना, तड़पों का पीछे आ रहना
ओठों के, जैसे कोई अंतस्तल चीरे

बेसुध किए बिना, वैसे ही मुझ को पीड़ा
बार बार व्याकुल करती थी, और विवश था
मैं भी. लेकिन क्या करता, यह कोई क्रीड़ा
न थी, अलग हो जाता, अपना नेकन बस था.

अगर न पीड़ा होती तो भी क्या मैं गाता
यदि गाता तो क्या उस में ऐसा स्वर आता.

12. 11. 1951

चिंताओं के सागर में मेरा मन डूबा
हुआ भीतरी लहरों के खाता हिचकोले
इधर उधर टकराता है. मैं भी बिन बोले
सब कुछ देखा करता हूँ. कोई मंसूबा

नहीं बाँध पाता. मन की यह भौंर अनोखी
डुबा दिया करती है सब कुछ, पल्ले आता
है केवल आँखों का पानी, धुल पुँछ जाता
है अंतर का चित्र इंद्रधनुषी, यह जोखी

हुई बात है. रात और दिन के दो पल्ले
दिखा रहे हैं डाँड़ी और सामने टेनी
मारा करते हैं. यह मूर्तिकार की छेनी
नहीं रूप रच दे अनगढ़ से कल्ले कल्ले.

हाल टिका कब पहिए का, क्या ऊपर नीचे,
हँसी खिला दे मुख को आँसू आकर सींचे

14. 11. 1951

८

उन के लिए नहीं लिखता मैं जो पढ़ सुन कर
कहेंगे कि यह लोकोत्तर रचना आई है
और किसी ने नहीं आज तक दिखलाई है
ऐसी सूझ बूझ, फिर गोष्ठी में चुन चुन कर

कहें सुनेंगे या अपनी देख कर अवज्ञा
कहेंगे कि यह कूड़ा है, बिलकुल कूड़ा है,
नहीं अगाध ज्ञान के जल में कवि बूड़ा है
छिछली बातें हैं, कोई गंभीर उपज्ञा

कहीं नहीं है. इन्हें नहीं, मैं उन्हें बुलाता
हूँ जो घूम रहे हैं व्याकुल प्यासे प्यासे,
यह मानस है उन्हीं के लिए, मंद हवा से
लहराना बस नहीं, कुछ नहीं इस से आता.

मेरे स्वर मन में सोए विश्वास जगाएँ,
सुस्ताए हैं जो पग उन को राह लगाएँ.

14. 11. 1951

थके हुए हैं पंख चेतना के सहला दो,
तुम से अधिक नहीं इतनी तो है ही आशा.
नहीं बकार फूटती, बिसर गई है भाषा,
बिलख रहा है मन बच्चे जैसा, बहला दो.

चेष्टा तज दो, मुझे भीड़ की ओर न ठेलो.
पाँव लड़खड़ाते हैं, दे दो तनिक सहारा,
अपनों से लज्जा कैसी. देखो, मैं हारा
हुआ तुम्हारे पास आ गया हूँ. अब ले लो

अपनी बाँहों में, छाती धुक धुक चलती है
नहीं साँस में संयम है. विश्राम मुझे दो,
थोड़ा सा विश्राम मुझे दो, पुनः काम दो,
ज्योति प्राण की अध्यवसायों से जलती है.

थोड़ी देर अकेलेपन का मन भूखा है
पदरज से जी का पतला सोता सूखा है.

14. 11. 1951

मेरी से बढ़ कर है तेरी आवश्यकता
कहा और अपने हाथों से अंतिम प्याला
बढ़ा दिया घायल के मुँह की ओर, उजाला
चेहरे पर मानवता का छाया; मैं थकता

कभी नहीं जब जब वह मुझे याद आता है,
तब तब मन ही मन कहता हूँ सिडनी कवि था,
कवि के भीतर मनुष्यता के तम का रवि था.
बड़े वेग से देश आज बढ़ता जाता है

सर्वनाश की ओर, गीध जैसे जन नेता
मृत जनता के शव पर चोंच मारते जाते
हैं, उन का वखान होता है, सब गुण गाते
हैं, मनुष्यता के स्तर पर कब कोई चेता.

किसी तरह भूलें हम अपना और पराया,
तभी फलेगा भले जनों का किया कराया.

18 11- 1951

झाड़ और झंखाड़ उखाड़ काट कर अपने
पथ को किया प्रशस्त, चला, रुक कर अलसाया
नहीं; तप गया फिर भी तरु की शीतल छाया
ताकी नहीं, न मुझ को सुख शय्या के सपने

पीछे खींच सके, समझा था यदि खोना है
तो मुझ को अभाव खोना है, फिर क्या रोना.
झेलूँगा हो ले जितना संचित है होना,
बूँद बूँद रक्त से मुझे नीरव बोना है

नव जीवन के बीज, धरातल की हरियाली
हो दिन दूनी रात चौगुनी, रहने वाले
कहने वाले सुनने वाले सहने वाले
रहें एक दूसरे के लिए, हो उजयाली.

बनी बनाई राह मुझे कब, कहाँ, सुहाई;
गहन विपिन में धँसा, नहीं की रामदुहाई.

19. 11. 1951

आ कर चुभा कलेजे में जो तीर व्यथा का
वह सारे शरीर को हिला हिला देता है
अनचाहे भी. भले कराहे जग, लेता है
दम भर को भी साँस नहीं. विश्व की कथा का

आमुख दुहरी साँसों से ही लिखा गया है
चार दिनों की रहे चाँदनी फिर अँधियारा
आय और छा जाय, न सूझे कूल किनारा;
चार दिनों में चाँद वह सभी दिखा गया है

जो जो आवश्यक था. केवल सुनी सुनाई
बात नहीं है, देखी सुनी, सही भोगी है,
आज उक्ति जो अभिव्यक्ति में उद्योगी है
दिल में घर कर लेगी यदि है चुनी चुनाई.

मिट्टी को मिट्टी कच्चे को पक्का सोना,
आँच दिखाती है, क्या रखना है, क्या खोना.

22. 11. 1951

वहुत सोचता हूँ मैं, आदत ही कुछ मेरी
बिगड़ गई है. ज़रा ज़रा सी बात और यह
घड़ियों का उन्मथन. तमाशा ही यह रह रह
कर होता रहता है. आए दिन तो फेरी

इस की सजग हुआ करती है. मैं समझाऊँ
किसे. उसी बिगड़े मन को, जो इतने पर भी
अपना है, बेचैन है, जिसे घर बाहर भी
शांति नहीं है. इस को ले जा कर उलझाऊँ,

मुझे सूत्र वह कहाँ मिलेगा. मुझ को दुनिया
नापसंद है जो रहने के लिए मिली है,
मेरे संतोषों की सारी नींव हिली है;
वही कार्य करना है जो करता है धुनिया.

दुनिया, तुझे वदल देने की इच्छा जागी,
एक दो नहीं, आज ज़माना ही है बाग़ी.

22 11. 1951

चौदह चरणों में मैं ने चौदह भुवन को
यथाशक्ति नापा है. यह केवल बातूनी
की बकवास नहीं है. समझ के लिए दूनी
शक्ति चाहिए, दौं दौं गिरते हुए घनों को

क्या मालूम, निहाई में कितनी दृढ़ता है.
भूमिगर्भ में जो कसमसा रही है ज्वाला,
धवल धाम अभ्रंकष हों या पर्वतमाला,
कभी किसी को कब गिनती है. यदि चिढ़ता है

क्षुद्र मनुष्य अहंकृति-हुंकृति में अपनी तो
क्या कर लेगा. विश्व यथाक्रम चला जा रहा,
संस्कृति-स्रोत इसी छाया में ढला जा रहा,
सब को ही हैं नई तपस्याएँ तपनी तो.

जो जो गोचर रहे चराचर वे सब आए
और अगोचर भाव रूप छाया से छाए.

22. 11. 1951

सुख के झूले पर दुख की, दुखियों की बातें
नहीं समझ में आतीं. ऐसे दुख का स्वर ही
ऊँचा है. छाया में इस की सुख का वर ही
मिल जाता है पल दो पल को. वे बरसातें

जो वसंत में होती हैं उन में पावस का
वह उत्फुल्ल प्रवाह, दौड़ती नदियाँ, काले
मेघों में साकार सुलभतम रूप निराले
दिव्य भव्य भावों के जिन में अक्षय रस का

संमूर्तन होता है, कहाँ दिखाई देते
हैं. सैद्धांतिक चकाचौंध में दुःख निराशा
व्यर्थ जान पड़ते हैं, पर जीवन की भाषा
गढ़ी हुई है दोनों की, मानव हैं सेते.

दुःख निराशा के मंथन से मिली सचाई
टिकती है, यह उड़ने वाली नहीं कचाई.

23. 11 1951

सभा पागलों ने की. रोक रोक कर बोले
एक दूसरे को. इस से स्वाभाविक स्वर भी
दिग्विजयी चीत्कार बन गया. इधर उधर
हंगामा सा खड़ा हो गया, धीरज डोले

वक्ताओं के श्रोताओं के. सब ने भावी
कार्यक्रम बतलाया और कहा इतना ही
नहीं और भी होगा. संप्रति हम जितना ही
कम कहते हैं, अच्छा है. हम को मायावी

वाग्वीरता से घृणा है. क्या क्या नहीं कहा.
एक दूसरे को कोसा, इन को ललकारा,
उन्हें लताड़ा, जो अपने थे उन्हें उबारा.
देखा गया हिसाब, शेष कुछ भी नहीं रहा.

नेता पागल दोनों खाते हैं धर्मादा,
नेता घाघ है, मगर पागल सीधा सादा.

24. 11 1951

कवि, खा खा कर तुम धनियों के फेंके टुकड़े
गान वासना के गाते हो, तुम जीवन का
सत्य कहाँ से देख सकोगे. इनको टुकड़े
पर भी कोई कभी न पूछेगा. तुम मन का

महल बनाया करो और जैसे मन बहले
वैसे करतब किया करो. अब तो सच्चाई
का आदर है. यहाँ कहीं कोई कुछ कह ले,
अधिक दिनों तक नहीं चल सकेगी कच्चाई.

साधारणीकरण कथनी की बात नहीं है,
करनी में आए तो आए. कविता सब का
मान करेगी. वह जीवन से दूर कहीं है,
ऐसा मत समझो. टूटा वह सपना कब का.

खेतों और कारखानों में जीवन-धारा
लहराती है, सत्य उजागर है अब सारा.

9 12 1951

कहते हैं नादान, 'हमें विचार बाहर का
नहीं चाहिए रंच, देश में ही विचार की
कमी कहाँ है, ध्यान ज़रा देने पर घर का
झलक उठेगा तत्व, कला होगी सँवार की.'

गांधी ऐसे अंध नहीं थे. कहीं कहा है,
अपनी खिड़की खोल रखो जिस से अंदर भी
आए हवा, प्रकाश. विरोध न कहीं रहा है
उन के स्वर में, और स्वरों में था वह स्वर भी.

क्या अंधता समान और भी कोई दुख है,
एक बड़ा इतिहास देश का आँखों आगे
फैला है. अविराम प्रयत्नों में ही सुख है,
किया करें उपयोग नयन का, मन के जागे.

बाहर से अनजान लुटेंगे फिर हम भीतर;
शुतुरमुर्ग की भाँति नहीं होंगे हम कायर.